

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 12 अध्याय 5: अमर आत्मा की शिक्षा

14 September 2026



जैसे-जैसे मृत्यु का क्षण निकट आता है, श्रीशुकदेव गोस्वामी राजा परीक्षित को अपनी अन्तिम एवं सर्वाधिक अन्तरंग शिक्षा देते हैं — कि आत्मा अजन्मा और अमर है, देह से उतनी ही भिन्न जितनी अग्नि ईंधन से, और सर्प के दंत देह को छू सकते हैं, आत्मा को कभी नहीं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। राजा परीक्षित को सृष्टि और प्रलय की विराट् लय में से ले चलने के पश्चात्, श्रीशुकदेव गोस्वामी अब अपने अन्तिम एवं कोमलतम उपदेश के लिए निकट आते हैं। इस महान् कथा के आरम्भ में राजा के जीवन के केवल सात दिन शेष थे; अब, जब सर्प तक्षक के दंश का नियत क्षण लगभग आ पहुँचा है, ऋषि लोकों और युगों की नहीं, अपितु उस एक वस्तु की बात करते हैं जो मृत्यु के क्षण में सचमुच महत्त्व रखती है — आत्मा की अमरता। द्वादश स्कन्ध का यह संक्षिप्त पंचम अध्याय ब्रह्म-विषयक श्रीशुकदेव की अन्तिम शिक्षा है। कुछ ही दीप्तिमान श्लोकों में वे राजा को प्रत्येक भय से ऊपर उठा देते हैं, यह दर्शाते हुए कि वह कभी जन्मा ही नहीं और कभी मर नहीं सकता, कि देह का विघटन केवल एक घट के फूटने-मात्र है जो घरे हुए आकाश को असीम आकाश में लौटा देता है। यही वह शान्त, स्वच्छ शिखर है जिसकी ओर सम्पूर्ण भागवत चढ़ता रहा है: अपने शाश्वत स्वरूप के ज्ञान से मृत्यु के समक्ष निर्भय हुई एक आत्मा।

अध्याय-पारेचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 12 (द्वादश स्कन्ध — अन्तिम स्कन्ध)
- अध्याय: 5 (पंचम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: अमर आत्मा पर श्रीशुकदेव की अन्तिम शिक्षा
- मुख्य वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित को सम्बोधित करते हुए; सूत गोस्वामी की नैमिषारण्य के ऋषियों को कही कथा के भीतर
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित; तथा नैमिषारण्य के ऋषिगण
- मुख्य स्थान: गंगा का तट, जहाँ परीक्षित अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हैं, नैमिषारण्य के वन-आश्रम के भीतर
- मुख्य विषय-वस्तु: आत्मा की अमरता, आत्मा का देह से भेद, मुक्त आत्मा का ब्रह्म से पुनर्मिलन, तथा मृत्यु के भय से मुक्ति
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 12, अध्याय 5, श्लोक 1-13
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

“मैं मरूँगा” — यह धारणा त्याग दो

श्रीशुकदेव उस विषय का स्मरण कराते हुए आरम्भ करते हैं जो सम्पूर्ण शास्त्र में प्रवाहित रहा है: कि भागवत में बार-बार भगवान् श्रीहरि, विश्व की आत्मा, की महिमा गाई गई है, जिनके हर्ष तथा क्रोध से क्रमशः सृष्टिकर्ता ब्रह्मा तथा संहारकर्ता रुद्र उत्पन्न हुए। फिर वे सीधे राजा की ओर मुड़कर एक चौंकाने वाला आदेश देते हैं — कि वह इस पशु-सदृश धारणा को त्याग दें कि वह मरने वाले हैं।

त्वं तु राजन् मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि ।

न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि ॥ २ ॥

tvaṁ tu rājan mariṣyeti paśu-buddhim imāṁ jahi na jātaḥ prāg abhūto 'dya deha-vat tvaṁ na naṅkṣyasi

अर्थ: किन्तु हे राजन्, “मैं मरूँगा” — यह पशु-सदृश धारणा त्याग दो। देह की भाँति, जो पहले अविद्यमान थी और किसी क्षण उत्पन्न होती है, तुम वैसे उत्पन्न नहीं हुए, और इसलिए तुम्हारा नाश नहीं होगा। (स्कन्ध 12, अध्याय 5, श्लोक 2)

तुम न कभी पिता के रूप में जन्मे, ऋषि आगे कहते हैं, न पुत्र या पौत्र के रूप में अन्तहीन क्रम में पुनः जन्मोगे, जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से पुनः बीज; क्योंकि तुम, आत्मा, देह से उतने ही भिन्न हो जितनी अग्नि उस ईंधन से जिसे वह जलाती है। जैसे स्वप्न में मनुष्य अपना ही शिर कटता देख सकता है — उसे देखता हुआ, फिर भी अक्षत साक्षी बना रहता है — वैसे ही मनुष्य केवल देह की मृत्यु देखता है, कभी उस आत्मा की नहीं जो द्रष्टा है। अतः भीतर की आत्मा वस्तुतः अजन्मा और अमर है।

घट और आकाश

इस अमरता को सजीव करने के लिए श्रीशुकदेव समस्त वेदान्त के सर्वाधिक प्रिय बिम्बों में से एक देते हैं: मिट्टी का घट और उसके भीतर घिरा आकाश। जब घट फूटता है, तब जो आकाश उसके भीतर बन्द प्रतीत होता था, वह वही असीम आकाश है जो पहले था — अक्षुण्ण और अपरिवर्तित। वैसे ही, जब देह अन्ततः विघटित होती है, तब आत्मा पुनः ब्रह्म के साथ एक हो जाती है।

घटे भिन्ने घटाकाश आकाशः स्याद् यथा पुरा ।
एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म सम्पद्यते पुनः ॥ ५ ॥

ghaṭe bhinne ghaṭākāśa ākāśaḥ syād yathā purā evaṁ dehe mṛte jīvo brahma sampadyate punaḥ

अर्थ: जैसे घट के फूटने पर घट के भीतर का आकाश पुनः वही खुला आकाश हो जाता है जो पहले था, वैसे ही देह के मरने पर जीव पुनः ब्रह्म के साथ एक हो जाता है। (स्कन्ध 12, अध्याय 5, श्लोक 5)

तब बन्धन कहाँ से आता है? केवल मन, श्रीशुकदेव समझाते हैं, आत्मा के लिए देह, विषय तथा कर्म गढ़ता है; यह माया है जो इस मन को रचती है, और माया से ही जीव का अन्तहीन संसरण प्रवाहित होता है। जैसे दीपक तभी तक प्रकाशित रहता है जब तक तेल, पात्र, बत्ती तथा अग्नि संयुक्त रहते हैं, वैसे ही तीनों गुणों — सत्त्व, रजस् तथा तमस् — के व्यापार से देह उत्पन्न होती और नष्ट होती है, जबकि जन्म-जन्मान्तर का भटकाव एक ही भूल में जड़ रखता है: देह को आत्मा समझ बैठना।

आत्मा, आकाश की भाँति स्वयंज्योति

फिर भी आत्मा इस उत्पत्ति-विनाश से कभी स्पर्शित नहीं होती। जैसे दीपक बुझने पर अग्नि-तत्त्व नष्ट नहीं होता, वैसे ही देह के गिरने पर आत्मा नष्ट नहीं होती। वह स्वयंज्योति है, स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों देहों से परे, सबका आधार, अपरिवर्तनीय, सर्वव्यापी, अनन्त, और अनुपम — ठीक आकाश के समान।

न तत्रात्मा स्वयंज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्तयोः परः ।
आकाश इव चाधारो ध्रुवोऽनन्तोपमस्ततः ॥ ८ ॥

na tatrātmā svayaṁ-jyotir yo vyaktāvyaktayoḥ paraḥ ākāśa iva cādhāro dhruvo 'nantopamas tataḥ

अर्थ: आत्मा स्वयंज्योति है, व्यक्त तथा अव्यक्त दोनों से परे; वह सबका आधार है, आकाश के समान — ध्रुव, अनन्त, और अनुपम। (स्कन्ध 12, अध्याय 5, श्लोक 8)

भगवान् वासुदेव के सतत चिन्तन से परिपूर्ण होकर, श्रीशुकदेव राजा से आग्रह करते हैं, इसी प्रकार अपने ही भीतर स्थित आत्मा के सत्य की, अपने ही प्रयत्न और स्पष्ट तर्क से, खोज करो।



श्रीशुकदेव घट और आकाश के बिम्ब से शिक्षा देते हैं: जैसे फूटा हुआ घट अपने घिरे आकाश को उस एक असीम आकाश में लौटा देता है, वैसे ही देह की मृत्यु पर आत्मा अनन्त ब्रह्म से पुनः मिल जाती है (श्लोक 5)।



ऋषि आत्मा को स्वयंज्योति तथा सर्वव्यापी, सबका अपरिवर्तनीय आधार, असीम और अनुपम बताते हैं — खुले आकाश के समान (श्लोक 8)।

सर्प के समक्ष निर्भय

अब ऋषि राजा के गहनतम भय को नाम लेकर सम्बोधित करते हैं। यद्यपि एक ब्राह्मण के शाप ने सर्प तक्षक को उसकी ओर भेजा है, वह सर्प भीतर की आत्मा को कभी नहीं जला सकेगा, भले ही वह देह को भस्म कर दे। वस्तुतः मृत्यु के समस्त दूत मिलकर भी उसे स्पर्श नहीं कर सकते जिसने यह जान लिया कि वह स्वयं मृत्युओं की मृत्यु है — वह आत्मा जो भगवान् के साथ एक है। उस ज्ञान में स्थित होकर, श्रीशुकदेव उससे कहते हैं, वह समस्त भय से पार हो जाएगा।

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् ।

एवं समीक्ष्य चात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ॥ ११ ॥

दशन्तं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः ।

न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः ॥ १२ ॥

*aham brahma param dhāma brahmāham paramam padam evam samīkṣya cātmānam ātmany
ādhāya niṣkale daśantaṁ takṣakaṁ pāde lelihānaṁ viśānanaiḥ na drakṣyasi śarīraṁ ca viśvaṁ
ca prthag ātmanah*

अर्थ: “मैं ब्रह्म हूँ, परम धाम; मैं ब्रह्म हूँ, परम पद।” इस प्रकार आत्मा को देखकर तथा स्वयं को अखण्ड ब्रह्म में स्थापित करके, तुम न तो अपने पैर को अपने विषैले दंतों से डँसते तथा चाटते सर्प तक्षक को, न अपनी देह को, न विश्व को, अपनी आत्मा से पृथक् देखोगे। (स्कन्ध 12, अध्याय 5, श्लोक 11-12)



“मैं ब्रह्म हूँ” के ज्ञान में स्थित, राजा परीक्षित गंगा के तट पर शान्त तथा निर्भय बैठे हैं, न निकट आते सर्प को, न देह को भी अपनी शाश्वत आत्मा से पृथक् देखते हुए (श्लोक 11-12)।

इसके साथ श्रीशुकदेव कोमलता से अपना उपदेश समाप्त करते हैं: यह सब, वे कहते हैं, उसी के उत्तर में सुनाया गया है जो परीक्षित — उनकी अपनी ही आत्मा — ने भगवान् हरि, विश्व की आत्मा, की लीलाओं के विषय में पूछा था। “और क्या,” वे पूछते हैं, “तुम सुनना चाहते हो?” यह महान् संवाद का शान्त, पूर्ण शिखर है: गुरु ने सब कुछ दे दिया है, और शिष्य तैयार हो गया है।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. आत्मा अजन्मा और अमर है। मृत्यु केवल देह की होती है; आत्मा, जो कभी जन्मी ही नहीं, कभी नष्ट नहीं हो सकती। इसे समझना ही समस्त भयों में गहनतम को खो देना है (श्लोक 2-4)।

2. आत्मा देह नहीं है। जैसे अग्नि ईंधन से और स्वप्नद्रष्टा स्वप्न से भिन्न है, वैसे ही साक्षी आत्मा उस देह से पूर्णतः भिन्न है जिसे वह देखती है (श्लोक 3-4, 7)।

3. मुक्ति फूटे घट के समान है। देह की मृत्यु पर साक्षात्कृत आत्मा कहीं यात्रा नहीं करती; वह बस यह प्रकट हो जाती है कि वह असीम ब्रह्म के साथ एक है, और सदा से एक थी (श्लोक 5)।

4. आत्मज्ञान हमें निर्भय बनाता है। “मैं ब्रह्म हूँ” में स्थित होकर, तक्षक का विष भी उस आत्मा को विचलित करने में असमर्थ हो जाता है जो किसी वस्तु को अपने से पृथक् नहीं देखती (श्लोक 11-12)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

यह वह अध्याय है जिसकी आवश्यकता हम में से प्रत्येक को एक दिन पड़ेगी। श्रीशुकदेव मरणासन्न राजा को विकर्षणों से सान्त्वना नहीं देते, न सत्य को टालते हैं; वे मृत्यु को ठीक उसके सामने रख देते हैं और फिर ज्ञान से उसका आतंक घोल देते हैं। इस शिक्षा को इतना कोमल इसका समय बनाता है — किसी कक्षा की अमूर्त शान्ति में नहीं, अपितु सर्प के निकट आने के ठीक किनारे पर कही गई। और ध्यान दीजिए कि ऋषि परीक्षित से देह की मृत्यु का इनकार करने या संकट को झुठलाने को नहीं कहते। तक्षक सचमुच आएगा; देह सचमुच गिरेगी। जो बदलता है वह है राजा की तादात्म्य-बुद्धि: वह साक्षी, अमर आत्मा के रूप में खड़ा होना सीखता है, जिसके लिए देह का अन्त एक फूटे घट के अपने आकाश को आकाश में लौटाने-मात्र से अधिक नहीं। भक्त के लिए यह ठण्डा दर्शन नहीं, अपितु वासुदेव में लीन जीवन का फल है — क्योंकि “भगवान् वासुदेव के सतत चिन्तन से परिपूर्ण होकर” ही ऋषि उसे खोज करने को कहते हैं। भगवान् का प्रेम और आत्मज्ञान यहाँ एक हो जाते हैं, और उस मिलन से जन्म लेती है एक ऐसी निर्भयता जिसे कोई मृत्यु हिला नहीं सकती।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज शान्त बैठिए और कोमलता से “मैं यह देह हूँ” इस विचार पर से अपनी पकड़ ढीली कीजिए। श्रीशुकदेव के बिम्ब का स्मरण कीजिए: आप आकाश हैं, घट नहीं; साक्षी हैं, बीतता दृश्य नहीं। मन में लाइए कि आपके भीतर वही आत्मा है जो देह के हर भय से अछूती है। फिर, परीक्षित की भाँति भगवान् को हृदय में धारण करते हुए, धीरे-धीरे ध्यानपूर्वक एक निश्चित संख्या में “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय” का जप कीजिए, प्रत्येक आवृत्ति को उस अमर आत्मा में गहरे बैठने दीजिए जो उनसे कभी पृथक् नहीं। इस छोटे से अभ्यास में आप शान्ति से उसी स्वतन्त्रता का अभ्यास करते हैं जो यह अध्याय मृत्यु के क्षण में प्रदान करता है।

उपसंहार

द्वादश स्कन्ध का पंचम अध्याय राजा परीक्षित को श्रीशुकदेव गोस्वामी की अन्तिम एवं सर्वाधिक व्यक्तिगत भेंट है — वह ज्ञान जो आत्मा को मृत्यु के पार निर्भय ले जाता है। कुछ ही देदीप्यमान श्लोकों में ऋषि दर्शाते हैं कि आत्मा कभी जन्मी ही नहीं और कभी मर नहीं सकती, कि वह देह से उतनी ही भिन्न है जितनी अग्नि ईंधन से, और कि मृत्यु पर उसका मोक्ष केवल एक घट के फूटने-मात्र है जो घिरे आकाश को असीम आकाश में मुक्त कर देता है। एक ब्राह्मण के शाप को धारण करता सर्प तक्षक भी केवल देह को छू सकता है, “मैं ब्रह्म हूँ” के ज्ञान में स्थित अमर आत्मा को कभी नहीं। नियत क्षण के ठीक किनारे पर कही गई, और भगवान् वासुदेव के सतत स्मरण में जड़ रखने वाली यह शिक्षा सम्पूर्ण भागवत का शान्त शिखर है: प्रेम और ज्ञान का मिलन, और मृत्यु से बिना किंचित् भय मिलने को तैयार हुआ एक हृदय।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

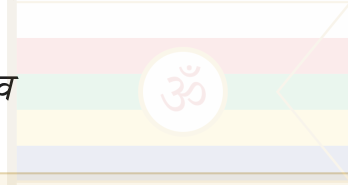
सन्दर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (सम्पूर्ण), द्वादश स्कन्ध, पंचम अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ॰ श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या भाष्य का पुनरुत्पादन नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव



ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-12-adhyay-5-amar-atma-antim-shiksha-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट